साप्ताहिक
Live not just breaTHE

दि कार्मिक पोस्ट

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/22-23

Global School Of Excellence, Obedullaganj

वर्ष : 8, अंक : 16 (प्रति बुधवार), इन्दौर, 7 दिसंबर 2022 से 13 दिसंबर 2022 पेज : 8 कीमत : 3 रुपये

पराली का समाधान, भारत में हर साल बचा सकता है 98,000 लोगों की जान

नई दिल्ली। भारत में वायु प्रदूषण एक बड़ी समस्या है जिसके लिए अनेक कारण जिम्मेवार हैं। इनमें से एक कारण पराली भी है। पता चला है कि देश में फसलों के बचे अवशेषों को जलाने से न केवल वायु गुणवत्ता खराब हो रही है, साथ थी इसकी कीमत इंसानी जीवन के रुप में भी चुकानी पड़ रही है।

इस बारे अमेरिका की हार्वर्ड यूनिवर्सिटी और मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (एमआईटी) के शोधकर्ताओं द्वारा किए नए अध्ययन से पता चला है कि देश में पराली और अन्य फसल अवशेषों को जलाने के कारण होते वायु प्रदूषण के चलते हर साल औसतन 44,000 से 98,000 लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ रहा है। यदि आंकड़ों पर गौर करें तो देश में पराली जलाने से होने वाले प्रदूषण के 67 से 90 फीसदी हिस्से के लिए केवल तीन राज्य पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश जिम्मेवार हैं। इस बारे में जर्नल नेचर कम्युनिकेशन्स में प्रकाशित नए अध्ययन से पता चला है कि भारत में सालाना करीब 50 करोड़ मीट्रिक टन फसल अवशेष बच जाता है, जिनमें से 10 मीट्रिक टन को खुले में जला दिया जाता है। बड़ी मात्रा में जलाई जा रही यह पराली और अन्य फसल अवशेष भारी मात्रा में प्रदूषण भी पैदा करता है। इतना ही नहीं रिसर्च से यह भी पता चला है कि फसल अवशेष जलाने से भारत की वार्षिक वायु गुणवत्ता पर जो प्रभाव पड़ रहा है, उसके 40 फीसदी के लिए पंजाब के छह जिले बरनाला, संगरूर, पटियाला, मोगा, लुधियाना और फतेहगढ़ साहिब जिम्मेवार हैं।

यह प्रदूषण देश में 27,000 मौतों के लिए जिम्मेवार है, जिसकी वजह से करीब 73,700 करोड़ रुपए के बराबर आर्थिक नुकसान हो रहा है। अकेले पटियाला और संगरूर इसमें 20 फीसदी का योगदान दे रहे हैं। ऐसे में इन जिलों में पराली और अन्य फसल अवशेषों को जलाने पर विशेष रूप से ध्यान देना जरूरी है। अपनी इस नई रिसर्च में वैज्ञानिकों ने भारत में 2003 से 2019 के बीच फसल अवशेषों को जलाने की घटनाओं, उनके स्थान, स्वास्थ्य पर पड़ते प्रभाव और उससे होते आर्थिक नुकसान का विश्लेषण किया है। अपने इस अध्ययन में शोधकर्ताओं ने पराली से होने वाले प्रदूषण को जानने के लिए ग्लोबल फायर एमिशन डेटाबेस के साथ देश में जिला स्तर पर फसलों के उत्पादन से जुड़े आंकड़ों का विश्लेषण किया है। जिससे यह समझा जा सके किसी एक स्थान पर, वर्ष के किसी विशिष्ट समय समय में अवशेषों को जलाने से भारत की वायु गुणवत्ता में कैसे बदलाव आया है। इस डेटा को स्वास्थ्य और आर्थिक प्रभाव से संबधित मॉडल की मदद से जोड़कर यह अनुमान लगाया गया है कि अवशेष जलाने की कौन घटनाएं, किन स्थानों पर किस समय आबादी को सबसे ज्यादा प्रभावित कर रही थी और उनसे मृत्यु दर और आर्थिक नुकसान में कब सबसे ज्यादा वृद्धि होती है। गौरतलब है कि नवंबर में गेहूं की बुवाई के लिए, आमतौर पर पंजाब में किसान अक्टूबर में काटी गई धान की फसल के बचे हुए ठूंठ या पुआल को जला देते हैं। यह जलता अवशेष हवा को कार्बन मोनोऑक्साइड, ओजोन, और पीएम 2.5 से भर देता है, जिसके चलते मीलों तक सांस लेना दुश्वार हो जाता है। यह एक ऐसी घटना है जो हर साल पंजाब, हरियाणा और उत्तर पश्चिमी भारत के 20 लाख खेतों में दोहराई जाती है। इसके चलते स्वास्थ्य सम्बन्धी जोखिम बढ़ जाता है। विशेष रूप से सांस और हृदय रोग से जुड़ी समस्याएं पैदा हो जाती हैं। जो देश में हजारों लोगों की असमय मृत्यु का कारण बनती हैं। इतना ही नहीं शोध से यह भी पता चला है कि पराली जलाने से होता यह पीएम 2.5 प्रदूषण न केवल भारत में बल्कि उत्तर-पश्चिमी हवाओं द्वारा ले जाए जाने के कारण पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश सहित पूरे दक्षिण एशिया में वायु गुणवत्ता को प्रभावित करता है। देखा जाए तो देश में इसे रोकने के लिए राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर बड़े पैमाने पर नियम बनाए गए हैं लेकिन वो कागजी शेर बन के रह गए हैं।

यही वजह है कि देश के इस हिस्से में पराली जलाने की घटनाएं बदस्तूर जारी है। इसके लिए कहीं हद तक चावल और गेहूं के अवशेषों का सीमित आर्थिक मूल्य भी जिम्मेवार है। ऊपर से चारे के रूप में पराली का घटता उपयोग, बायोफ्यूल, उर्वरक और पेपर निर्माण में इनका सीमित उपयोग भी इनको जलाने की बढ़ती घटनाओं के लिए जिम्मेवार हैं। किसानों के पास अन्य समाधान न होने के कारण पराली को जलाना एक सस्ता और जल्द विकल्प है। जो इस तरह की घटनाओं को बढ़ावा दे रहा है। गौरतलब है कि इसको जलाने पर राष्ट्रीय प्रतिबंध पिछले साल किसानों के दबाव के कारण रद्द कर दिया गया था।

क्या है समाधान

लेकिन इस नए अध्ययन में सामने आया है कि कैसे छोटे पैमाने पर की गई लक्षित कार्रवाई पूरी आबादी पर मंडराते वायु प्रदूषण और स्वास्थ्य संबंधी जोखिम को कम कर सकती है। रिसर्च में इस समस्या के लिए जो समाधान प्रस्तुत किए हैं उनके अनुसार यदि पंजाब में किसान दिन में दो घंटे पहले फसल अवशेषों को जलाते हैं, तो वे वायु गुणवत्ता पर इसके प्रभावों का 14 फीसदी तक कम कर सकते है।

इतना ही नहीं इससे हर साल करीब 9,600 लोगों की जान बचाई जा सकती है। मतलब की इससे करीब 26,205 करोड़ रुपए (320 करोड़ डॉलर) का आर्थिक फायदा होगा। साथ ही किसान भाई बासमती जैसी धान की किस्मों को अपनाकर, इसमें और कमी कर सकते हैं। जिनके लिए कम अवशेषों को जलाने की आवश्यकता होती है। ऐसे में इस तरह की लक्षित कार्रवाइयों से काफी फायदा मिल सकता है। यह देखते हुए कि पंजाब छह जिलों का इसमें बहुत बड़ा योगदान है यदि इन उपायों को कुछ क्षेत्रों में अपनाया जाए तो उससे काफी फायदा मिल सकता है।

अरावली में नए स्थानों पर हो रहा है अवैध खनन

नई दिल्ली। संगठन अरावली बचाओ नागरिक आंदोलन ने नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) में सबमिट अपनी रिपोर्ट में कहा है कि अरावली वन क्षेत्र के नए स्थानों जैसे बालियावास गांव के पास अवैध रेत खनन के सबूत मिले हैं। यह क्षेत्र हरियाणा में गुड़गांव के पास स्थित है। ऐसे में अरावली बचाओ नागरिक आंदोलन ने अरावली में होते इस अवैध खनन के गोरखधंदे को रोकने के लिए एक स्वतंत्र अरावली संरक्षण प्राधिकरण की स्थापना के साथ वैकल्पिक निर्माण सामग्री को बढ़ावा देने जैसे उपाय सुझाए हैं। पूरा मामला हरियाणा के फरीदाबाद, गुरुग्राम और नूंह में अरावली रेंज में हो रहे अवैध बालू और पत्थर खनन से जुड़ा है।

गौरतलब है कि यह रिपोर्ट 7 अक्टूबर, 2022 को संयुक्त समिति द्वारा सबमिट रिपोर्ट और 8 अक्टूबर, 2022 को खान और भूविज्ञान विभाग के निदेशक द्वारा दिए हलफनामे के जवाब में अरावली बचाओ नागरिक आंदोलन द्वारा कोर्ट में सबमिट की है। रिपोर्ट के मुताबिक गुड़गांव में गैरतपुर बास गांव के पास पंडाला हिल्स अवैध खनन के चलते बुरी तरह प्रभावित हुआ है लेकिन इसके बावजूद उसकी पारिस्थितिक बहाली के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया है। रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि साइट पर दौरे के दौरान पंडाला हिल्स में ताजा अवैध खनन के सबूत भी मिले हैं। गौरतलब है कि आवेदक अरावली बचाओ नागरिक आंदोलन की टीम ने 6 नवंबर 2022 को टिकली गांव के पास अरावली क्षेत्र में अवैध खनन होते देखा था। इसी तरह जलालपुर सोहना के पास के अरावली क्षेत्र का भी यही हाल है। वहीं खड़क गांव के पास किए गए स्थल निरीक्षण में भी अवैध खनन से जुड़ी गतिविधियां पाई गई हैं। इसी तरह, कोटा खंडेवला गांव में मानेसर पुलिस लाइन परिसर के पास अरावली क्षेत्र में मार्च 2022 में किए एक साइट दौरे के दौरान अवैध पत्थर खनन पाया गया था। आवेदक ने 28 नवंबर, 2022 को अपनी रिपोर्ट में कहा है कि समिति की ओर से अवैध पत्थर खनन को साधारण मिट्टी का निष्कर्षण कहना गलत है। हरियाणा खान एवं भूतत्व विभाग, फरीदाबाद, गुरुग्राम और नूंह जिलों के अरावली पहाड़ी क्षेत्र में अवैध खनन को रोकने के लिए प्रतिबद्ध है। जानकारी दी गई है कि विभाग ने अरावली पहाड़ी क्षेत्र में अवैध खनन की 44 शिकायतों में से 9 मामलों में कार्रवाई की है। इसके अलावा अरावली क्षेत्र से साधारण मिट्टी/मिट्टी के खनन के संबंध में कोई अल्पकालीन परमिट जारी नहीं किया गया है।

इस मामले में खान और भूविज्ञान विभाग ने न्यायाधिकरण को सूचित किया है कि उसने अवैध खनन को रोकने के लिए कार्य योजना प्रस्तुत की है। यह निर्णय लिया गया कि हरियाणा में अवैध खनन की रोकथाम में शामिल सभी हितधारकों के मार्गदर्शन के लिए एक मानक संचालन प्रक्रिया (एसओपी) तैयार की जाएगी। इस संबंध में 22 अगस्त 2022 के पत्र द्वारा सभी फील्ड कार्यालयों को निर्देश पहले ही जारी किए जा चुके हैं। इस मानक संचालन प्रक्रिया में जिला और राज्य दोनों स्तरों पर विभिन्न प्राधिकरणों द्वारा की जाने वाली कार्रवाईयां शामिल की जाएंगी।

पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने पर सख्त एनजीटी, नागालैंड पर 200 करोड़ का जुर्माना लगा

नई दिल्ली. नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) ने नागालैंड राज्य पर 200 करोड़ रुपये का जुर्माना लगाया है. जुर्माना पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने वाले ठोस और तरल अपशिष्ट प्रबंधन का कथित रूप से प्रबंधन नहीं करने को लेकर लगाया गया है. न्यायमूर्ति आदर्श कुमार गोयल की पीठ ने 24 नवंबर को आदेश पारित करते हुए कहा कि सीवेज उत्पादन और उपचार में अंतर और ठोस अपशिष्ट प्रबंधन में अंतर के बयान पर विचार करते हुए, हम प्रदूषक भुगतान सिद्धांत पर राज्य पर 200 करोड़ रुपये का मुआवजा वसूल करते हैं. यह जुर्माना तरल और ठोस कचरे के वैज्ञानिक रूप से प्रबंधन में विफलता के लिए कानून के जनादेश के उल्लंघन में, विशेष रूप से सुप्रीम कोर्ट और इस न्यायाधिकरण के निर्णयों के लिए है.

बेंच ने यह भी कहा कि राशि को रिंग में रखा जा सकता है. राज्य में अपशिष्ट प्रबंधन हेतु केवल मुख्य सचिव के निर्देशानुसार फेन्स एकाउंट संचालित किया जायेगा. 200 करोड़ रुपये का उपयोग ठोस अपशिष्ट प्रसंस्करण सुविधाओं की स्थापना, पुराने कचरे के उपचार और सीवेज उपचार संयंत्रों (एसटीपी) और एफएसएसटीपी की स्थापना के लिए किया जाना चाहिए, ताकि कोई अंतर न रहे. हमें उम्मीद है कि मुख्य सचिव के साथ बातचीत के संदर्भ में नागालैंड राज्य एक अभिनव दृष्टिकोण और कड़ी निगरानी के माध्यम से इस मामले में और उपाय करेगा. यह सुनिश्चित करेगा कि ठोस और तरल अपशिष्ट उत्पादन और उपचार में अंतर जल्द से जल्द पाटा जाए. बेंच ने शहरों, कस्बों और गांवों को बिना किसी देरी के समयबद्ध तरीके से मुख्य सचिव द्वारा अनुपालन सुनिश्चित करने का निर्देश दिया है. सुप्रीम कोर्ट के 2 सितंबर 2014 के आदेश के अनुसार ठोस और तरल अपशिष्ट प्रबंधन के मुद्दों की निगरानी ठोस अपशिष्ट प्रबंधन और 22 फरवरी 2017 के तरल अपशिष्ट प्रबंधन के आदेश के अनुसार ट्रिब्यूनल द्वारा की जा रही है. अन्य संबंधित मुद्दों में 351 नदी के हिस्सों का प्रदूषण, वायु गुणवत्ता के मामले में 124 गैर-प्राप्ति वाले शहर, 100 प्रदूषित औद्योगिक क्लस्टर, अवैध रेत खनन आदि शामिल हैं, जिन्हें पहले भी निपटाया गया है, लेकिन हम वर्तमान मामले में कार्रवाई को सीमित करने का प्रस्ताव करते हैं. आदेश में कहा गया है कि ठोस कचरा और सीवेज प्रबंधन के दो मुद्दे हैं. ट्रिब्यूनल ने आगे कहा कि निरंतर गैर-अनुपालन के मद्देनजर, 16 जनवरी, 2019 के आदेश के अनुसार, ट्रिब्यूनल ने अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के मुख्य सचिवों को व्यक्तिगत रूप से बातचीत के लिए उपस्थित होने का निर्देश दिया. ट्रिब्यूनल ने यह भी कहा कि पर्यावरणीय मानदंडों का बड़े पैमाने पर गैर-अनुपालन के परिणामस्वरूप मौतें और बीमारियां होती हैं और पर्यावरण को अपरिवर्तनीय क्षति होती है, ऐसी विफलताओं के लिए जवाबदेही तय होना जरूरी है और निर्देशों का उल्लंघन अपराध है.

भारत में हर साल दो लाख से ज्यादा अजन्मों को गर्भ में मार रहा है बढ़ता वायु प्रदूषण

मुंबई। इस साल करीब 13.4 करोड़ बच्चे जन्म लेंगें, लेकिन हर कोई इन दुधमुहों जितना भाग्यशाली नहीं होता। यूनाइटेड नेशंस इंटरएजेंसी ग्रुप फॉर चाइल्ड मॉर्टेलिटी एस्टिमेशन के अनुसार दुनिया भर में करीब 20 लाख अजन्में ऐसे भी होते हैं जो इस दुनिया को नहीं देख पाते। मतलब की हर दो सेकंड में एक बच्चा मृत पैदा होता है।

देखा जाए तो प्रसवकाल में होने वाली मौतों के कई कारण हैं जिनमें प्रसव संबंधी जटिलताओं से लेकर संक्रमण तक कई कारक जिम्मेवार हैं। लेकिन जर्नल नेचर कम्युनिकेशन में प्रकाशित एक नए अध्ययन से पता चला है कि इसके लिए बढ़ता वायु प्रदूषण भी जिम्मेवार है। 137 देशों में स्टिलबर्थ से जुड़े आंकड़ों के विश्लेषण से पता चला है कि 8.3 लाख अजन्मों की मौत के लिए बढ़ता प्रदूषण विशेषरूप से पीएम 2.5 जिम्मेवार है। इतना ही नहीं रिसर्च में यह भी सामने आया है कि इसका सबसे ज्यादा बोझ कमजोर और विकासशील देशों पर पड़ रहा है। अनुमान है कि इन देशों में स्टिलबर्थ के 39.7 फीसद मामलों के पीछे की वजह यह बढ़ता प्रदूषण ही है। गौरतलब है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लूएचओ) के अनुसार जब गर्भावस?था के 28 हफ्तों या उसके बाद बच्चे का जन्म होता है जिसमें जीवन के कोई निशान नहीं होते हैं तो उसे स्टिलबर्थ कहते हैं। वहीं यदि पीएम 2.5 की बात करें तो, वायु में मौजूद प्रदूषण के कणों के 2.5 माइक्रोन यानी की एक मीटर के दस लाखवें हिस्से या उससे छोटे महीन कणों को कहते हैं। बीजिंग की पेकिंग यूनिवर्सिटी के हेल्थ साइंस सेंटर से जुड़े पर्यावरण वैज्ञानिक और सार्वजनिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ ताओ ज्यू के नेतृत्व में किए इस नए शोध से पता चला है कि वातावरण में पीएम 2.5 के प्रत्येक 10 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर की वृद्धि से स्टिलबर्थ का जोखिम 11 फीसदी तक बढ़ सकता है। अपने इस अध्ययन में शोधकर्ताओं ने जनसंख्या और स्वास्थ्य से जुड़े 113 सर्वेक्षणों से लिए 32,449 जीवित जन्में और 13,870 मृत जन्में दुधमुहों से जुड़े आंकड़ों का विश्लेषण किया है।

जलवायु इंजीनियरिंग और जलवायु परिवर्तन

वातावरण में कुछ बदलाव करके वैश्विक तापवृद्धि से निपटने का विचार लगातार जोर पकड़ रहा है। परंतु इसके साथ ही कुछ सवाल भी जुड़े हुए हैं। बता रहे हैं नितिन देसाई किम स्टैनली रॉबिनसन द्वारा लिखित हालिया विज्ञान गल्प उपन्यास मिनिस्ट्री ऑफ द फ्यूचर में बताया गया है कि भविष्य में जब विभिन्न देश वैश्विक तापवृद्धि को थामने के लिए कार्बन उत्सर्जन में कमी करने के कार्यक्रम के क्रियान्वयन में विफल हो जाएंगे तो क्या होगा उपन्यास की शुरुआत उत्तर प्रदेश में लू के गर्म थपेड़ों से होती है जिससे लाखों लोग मारे जाते हैं। भारत सरकार इसकी प्रतिक्रिया में यह फैसला करती है कि वह हिंद महासागर के ऊपर बादलों पर सल्फर डाइऑक्साइड का छिड़काव करेगी जिससे सौर विकिरण कम होगा और तापमान में कमी आएगी। यह उपाय कारगर साबित होता है और दो-तीन वर्ष तक तापमान में कमी आती है। उपन्यास में आगे विस्तार से बताया गया है कि जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए ऐसे अन्य उपाय अपनाए जाते हैं।

इस विज्ञान गल्प में जो किस्से वर्णित किए गए वे काफी हद तक सच साबित हो सकते हैं। खासकर इसलिए कि मिस्र में हुई बैठक समेत जलवायु परिवर्तन पर कुछ हालिया बैठकें उत्सर्जन में पर्याप्त कमी के एजेंडे पर आगे बढ़ने में नाकाम रही हैं। उत्सर्जन में कमी का वह एजेंडा पेरिस समझौते की देन था। मिस्र में हुई बैठक में तथाकथित क्षति और नुकसान क्षतिपूर्ति को लेकर कुछ पहल जरूर हुई। उत्सर्जन कटौती पर समझौते के अभाव में इसकी कुछ महत्ता अवश्य है, हालांकि जवाबदेही की अवधारणा इससे शिथिल हुई है।

एक चीज जो अब नदारद है वह है कि उत्सर्जन कटौती की प्रतिबद्धताओं के लिए जरूरी दबाव। ऐसे में शर्म अल शेख समझौते के मुताबिक उत्सर्जन कटौती को बढ़ाने के प्रयास गैर दंडात्मक, सुविधा मुहैया कराने वाले, राष्ट्रीय संप्रभुता का सम्मान करने वाले और राष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुरूप होने चाहिए। इनमें राष्ट्रीय निर्धारक योगदानों की प्रकृति का ध्यान रखा जाना चाहिए और नए लक्ष्य नहीं थोपे जाने चाहिए। दबाव डालने के लिए इससे शिथिल व्यवस्था बना पाना मुश्किल होगा। और सख्त कदमों की आवश्यकता है। जलवायु ऐक्शन ट्रैकर की नवंबर 2022 की रिपोर्ट में कहा गया है कि 2100 तक तापमान में औद्योगीकरण के पहले की तुलना में 2.70 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि होगी और 2022 के स्तर से करीब 1.50 डिग्री सेल्सियस की। तापवृद्धि का सिलसिला 2100 के बाद भी जारी रहेगी। अगर विभिन्न देश 2030 और उसके बाद के दीर्घकालिक लक्ष्य तय करते हैं तो कुछ पहल हो सकती है। लेकिन अब यह मानने में अधिक समझदारी होगी कि आने वाली पीढ़ियों को कहीं अधिक गंभीर गर्मी, बाढ़, सूखे और पानी की अनिश्चितता, तूफान, जलस्तर में इजाफा, जैव विविधता को नुकसान आदि का सामना करना होगा। इतना ही नहीं जलवायु परिवर्तन के हद से गुजर जाने और आर्कटिक तथा अंटार्कटिका में बर्फ की चादर के पिघलने तथा बड़ी तादाद में कार्बन उत्सर्जन के बाद मॉनसून में भी भारी बदलाव आ सकता है। क्या इसका अर्थ यह है कि विभिन्न देशों को उत्सर्जन में कमी के विकल्पों पर ध्यान देना शुरू कर देना चाहिए, मसलन सौर ताप में कमी लाने के प्रयास जैसे साइबेरिया में रहने वाले अल्कोहल पीते रहते हैं और पेट की गड़बड़ी से निपटने के लिए ऐंटासिड लेते रहते हैं।

भौगोलिक इंजीनियरिंग के विकल्प को कितना समझा गया है यह ध्यान रखते हुए इसका इस्तेमाल कैसे किया जाएगा कि वैश्विक वातावरण देशों की सीमाओं का ध्यान नहीं रखता और एकतरफा कदम अन्य देशों को नुकसान भी पहुंचा सकते हैं। इन सवालों के जवाब जरूरी हैं क्योंकि कई विकसित देशों ने भौगोलिक इंजीनियरिंग के विकल्प को लेकर शोध भी शुरू कर दिया है। भौगोलिक इंजीनियरिंग उत्सर्जन कटौती के विकल्पों की कमी को दूर करती है जो तापमान को एक निश्चित दायरे में बढ़ने देने के लिए जरूरी हैं। इस समय जिस विकल्प पर चर्चा की जा रही है वह है समतापमंडल में एरोसॉल को छोड़ना। उपन्यास में भी भारत सरकार ने यही किया। एरोसॉल वातावरण को तेजी से ठंडा कर सकते हैं। वे वातावरण में ज्यादा देर तक मौजूद नहीं रहते और कार्बन डाइऑक्साइड जैसे लंबे समय तक टिकने वाले उत्सर्जन की तुलना में इनका प्रदर्शन अलग होता है। अनुमान है कि एंथ्रॉपॉजेनिक एरोसॉल्स ने ही पिछली सदी में वैश्विक तापमान को 0.8 डिग्री सेल्सियस तक कम करने में मदद की है। हालांकि उनका प्रभाव अनिश्चित है और वह देशों की सीमाओं का मान नहीं रखता। एक और बात इसके प्रभाव का आकलन करने के लिए ज्यादा वैज्ञानिक प्रमाण मौजूद नहीं हैं। समतापमंडल एरोसॉल इंजेक्शन (एसएआई) और सौर विकिरण संशोधन (एसआरएम) के अन्य उपाय अभी सैद्धांतिक हैं क्योंकि उनके प्रभाव के आकलन के लिए उन्हें आजमाया नहीं गया है। सौर विकिरण भी राष्ट्रीय सीमाओं की इज्जत नहीं करता और एसएआई और एसआरएम से जुड़े कदमों का असर सीमाओं से परे होगा। इसलिए अगर ये भौगोलिक इंजीनियरिंग संबंधी विकल्प वैध बनाने हैं तो विभिन्न देशों को साथ लाने के लिए दो अहम कदम उठाने होंगे। पहला है सहकारी वैज्ञानिक शोध प्रक्रिया की स्थापना करना ताकि उन बड़े ज्वालामुखी विस्फोटों के आंकड़ों का विश्लेषण किया जाए जिन्होंने सौर विकिरण में बदलाव किया हो। दूसरा है एक वैश्विक समझौता करना ताकि एकपक्षीय कदमों को रोका जा सके और भौगोलिक इंजीनियरिंग वाली पहलों के लिए बहुपक्षीय सहमति स्थापित की जा सके। यह काम बाद में भी हो सकता है जब वैज्ञानिक शोध प्रक्रिया संभावित प्रभाव को स्पष्ट कर दे। भौगोलिक इंजीनियरिंग का वास्तविक क्रियान्वयन केवल तभी होगा जब गर्म हवा के थपेड़ों जैसी अतिरंजित मौसमी घटनाएं घटित होने लगेंगी और भविष्य में ऐसा ही होना है। साथ ही इसकी आवश्यकता तभी होगी जब चिंता यह हो कि ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जन में कमी उस गति से नहीं आएगी जो गति तापवृद्धि को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित रखने के लिए आवश्यक है। भले ही इस पूरी प्रक्रिया को घटित होने में कई दशक का समय लगेगा लेकिन विश्वसनीय बहुपक्षीय संवाद और निर्णय प्रक्रिया को लेकर अभी काम शुरू कर दिया जाना चाहिए क्योंकि गलत निर्णयों का जोखिम बहुत अधिक है। शायद यूरोपीय आयोग इस दिशा में पहलकदमी कर सकता है क्योंकि इसके लिए अंतर्देशीय व्यवस्था चाहिए। जलवायु कार्यकर्ताओं को ध्यान देना चाहिए कि भौगोलिक इंजीनियरिंग को लेकर वैश्विक कदम एक सतर्कता भरा कदम है और उसके चलते बड़े उत्सर्जकों पर यह दबाव कम नहीं होना चाहिए कि वे अपना कार्बन उत्सर्जन कम करने का अधिक से अधिक प्रयास करें।

कृत्रिम मेधा का उभार और हमारा भविष्य

आप अगर मुझे नायलॉन की साड़ी नहीं दिलाएंगे तो मैं कॉलेज नहीं जाऊंगी।' यह मेरी बहिन की आवाज थी जो सुबकते हुए माता-पिता से यह बात कह रही थी। 'हमने तुम्हारे कॉलेज जाने के लिए जो आधा दर्जन साड़ियां खरीदी थीं उनमें क्या दिक्कत है' मेरी मां ने उससे पूछा। 'वे सारी सूती साड़ियां हैं जिन्हें केवल बुजुर्ग महिलाएं पहनती हैं!' मेरी बहिन ने फिर से रुआंसी आवाज में कहा। मेरी यह याद सन 1960 के दशक की है जब मैं हाईस्कूल का छात्र था और मेरी बहिन ने कॉलेज में प्रवेश लिया ही था। तकरीबन 60 वर्ष बाद हाल ही में मुझे यह बात याद आई। आखिर वह कौन सी बात थी जिसने इतने लंबे अरसे के बाद मुझे यह बात याद दिलाई एक पल के लिए मुझे उस गुजरे वक्त में जाने दीजिए- मेरे माता-पिता ने मेरी बहिन को नायलॉन की वह साड़ी दिलाकर शांत किया जिसे वह एक आधुनिक युवती के रूप में पहनना चाहती थी। अब समय के पहिये को आगे घुमाते हैं और वर्तमान में लौटते हैं।

आज यानी 21वीं सदी के इस दशक में मेरी मित्र या रिश्तेदार कुछ भी पहन लेंगी लेकिन नायलॉन या किसी अन्य कृत्रिम धागे से बनी साड़ी तो बिल्कुल नहीं। आखिर वह कौन सी बात है जो किसी चीज को आधुनिकता के प्रतीत से ऐसी चीज में बदल देती है जिससे बचा जाना चाहिए क्या कृत्रिम मेधा/डिजिटल क्रांति/मशीन आधारित गहन सीखों को लेकर हमारे मौजूदा उत्साह के साथ भी आने वाले दिनों में कुछ ऐसा ही होने वाला है अगर हम रासायनिक क्रांति की राह का अध्ययन करें तो शायद हम इस बात का पता चला सकें कि ऐसा क्यों होता है रासायनिक क्रांति भी ऐसी ही तकनीकी लहर थी जैसी आज आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस है। रासायनिक क्रांति की शुरुआत 18वीं सदी में बहुत छोटे पैमाने पर हुई थी और यह सन 1960 के दशक में अपने शिखर पर पहुंची। उसके पश्चात इसमें धीरे-धीरे गिरावट आनी शुरू हुई और एक समय ऐसा आ गया जब प्लास्टिक की हर वस्तु को प्रदूषण फैलाने वाला माना जाने लगा और ऐसी मांग उठने लगी कि केवल ऐसे प्लास्टिक का इस्तेमाल किया जाए जिसका पुनर्चक्रण किया जा सकता हो। उदाहरण के लिए चाय ऐसे कप में दी जाए जो जैविक रूप से अपघटन लायक हो या फिर उसे प्लास्टिक के कप के बजाय मिट्टी के कुल्हड़ में दिया जाए।

आज जिन कृत्रिम रसायनों को नकारा जा रहा है, एक समय वे पूरी दुनिया के लिए गर्व और जलन का विषय हुआ करते थे। कृत्रिम रासायनिक उर्वरक तथा कीटनाशक सन 1900 के दशक के आरंभ में प्रचलन में आए और इनकी मदद से खाद्यान्न उत्पादन में नाटकीय वृद्धि करने में मदद मिली और दुनिया भर से भुखमरी कम करने में मदद मिली। बीसवीं सदी के आरंभ में कृत्रिम रसायनों से बनी औषधियों मसलन पेंसिलीन तथा मीजल्स, मम्प्स, चिकनपॉक्स, रुबेला तथा हेपटाइटिस जैसी बीमारियों से निपटने के लिए बने टीकों ने दुनिया को तमाम तरह की बीमारियों से बचाया। गैसों के अंतस्फोट के गुणों के इर्दगिर्द हुए नवाचार के कारण इंटरनल कंबस्चन इंजन का अविष्कार हुआ और कार जैसे मोटर वाहन बन सके। उसके बाद सन 1960 के दशक में पॉलिएस्टर या नायलॉन से बनी शिफॉन साड़ियों का प्रचलन भारत में तेजी से जोर पकड़ गया। उस दौर में बॉलीवुड की अनेक फिल्मों में यह साड़ी देखने को मिली। जिस समय यह हो रहा था और जिन कारोबारों की बदौलत ये शानदार उत्पाद बाजार में आ रहे थे, उनका मीडिया में जमकर गुणगान किया जा रहा था। परंतु इसके साथ ही इन उत्पादों के ऐसे नकारात्मक प्रभाव भी थे जो पूरी दुनिया को हिला कर रख सकते थे। रासायनिक क्रांति तथा नायलॉन और पॉलिएस्टर की साड़ियों, कमीजों और पैंटों (धोती और कुर्ता भी) के बढ़ते प्रचलन के बीच सबसे बुरा असर सूती कपड़े बनाने वाली मिलों पर पड़ा। उस वक्त अकेले मुंबई में 100 सूती मिलें बंद हो गईं। ये मिलें जिस तरह बंद हुईं वह बात भी ध्यान देने लायक है। पहले चरण में उनकी बिक्री में गिरावट आई और यह गिरावट इस स्तर तक पहुंच गई कि मिलों को अपने बोनस में कटौती करनी पड़ी और उसके बाद उन्हें वेतन बढ़ोतरी करने से इनकार करना पड़ा और आखिर में वे बुनियादी वेतन चुकाने में भी असमर्थ होने लगीं।

तब इससे प्रभावित करीब दो लाख कामगारों ने श्रम संगठन बनाए और वे हड़ताल पर चले गए। जब तकनीक की लहर ने आगे और जगह बनाई तो सूती कपड़ा मिलें बंद हो गईं। बंबई टेक्सटाइल मिल तथा सन 1980 के दशक में देश के अन्य हिस्सों में सूती मिलें भी बंद हुईं। खेद की बात है कि आज भी अगर आप यह सवाल करें कि बंबई टेक्सटाइल मिलें क्यों बंद हुईं तो आपको उत्तर मिलेगा कि दत्ता सामंत और मजदूर संगठनों के कारण (दत्ता सामंत एक आक्रामक यूनियन नेता थे जिन्होंने बंबई टेक्सटाइल मिल वर्कर्स यूनियन का नेतृत्व किया और जिनकी सन 1997 में हत्या कर दी गई थी)। जिस समय यह नाटक रचा जा रहा था, उसी दौरान कृत्रिम कपड़े की तकनीक सतह के नीचे से तेजी से जगह बनाती जा रही थी। यह बात अलग है कि इसके बारे में शायद ही कभी चर्चा होती थी।

रासायनिक तकनीक के इस प्रसार का एक दुष्प्रभाव तो यही हुआ कि टूथपेस्ट और कपड़ा धोने के साबुन और लिक्विड का निर्माण करने वालों तथा दैनिक उपयोग की ऐसी वस्तुएं बनाने वालों की बाढ़ आ गई। कोलगेट, यूनिलीवर तथा सैकड़ों कंपनियों ने रासायनिक क्रांति की। यह तकनीक इतनी व्यापक थी कि निर्माताओं के लिए अपने उत्पादों में भेद कर पाना मुश्किल था।

अगला चमत्कार विज्ञापन एजेंसी के रूप में सामने आया जिन्होंने छवि के आधार पर उत्पादों में अंतर करना शुरू किया। पहले अखबारों और पत्रिकाओं में रचनात्मक विज्ञापन आए और फिर सिनेमा और टेलीविजन पर। शायद ही किसी ने ध्यान दिया कि इस सबके पीछे रासायनिक क्रांति का हाथ है। अब जबकि कृत्रिम मेधा क्रांति समाज में नजर आ रही है तो कौन से न उद्योग सामने आएंगे कौन से मौजूदा उद्योग समाप्त होंगे कौन से नए रोजगार तैयार होंगे और कौन से रोजगार समाप्त हो जाएंगे इन सवालों के बीच अहम बात यह है कि हम किन व्यवहारों को पुराना बताकर त्याग देंगे कृत्रिम मेधा वाली दुनिया भी क्या कभी सूती साड़ियों की तरह वापसी करेगी किन नीतिगत पहलों के सहारे एक देश के रूप में हम यह जटिल सफर तय कर पाएंगे

सालों पुरानी राइस मिल उगल रही प्रदूषण, पर्यावरण के अधिकारियों ने दी चेतावनी

रायपुर। शहर के भीतर आमासिवनी स्थित अधिकांश राइस मिलें 60 से 70 साल पुरानी हैं। यहां पर लगा पॉल्यूशन कंट्रोल सिस्टम तकरीबन एक माह से खराब है। ये सालों पुरानी राइस मिल अब रखरखाव के अभाव में अब प्रदूषण उगल रही हैं। इसकी शिकायत के बाद पर्यावरण संरक्षण मंडल के अधिकारियों ने राइस मिल की जांच की, जिसमें टीम ने एक सप्ताह के भीतर पूरी राइस मिल का मेंटेनेंस करके पॉल्यूशन कंट्रोल सिस्टम अपग्रेड करने के निर्देश दिए हैं। ऐसा नहीं करने पर राइस मिल को सील करने की चेतावनी भी दी। पर्यावरण के अधिकारियों के इस निर्देश पर कॉलोनी के लोगों ने भी सहमति दर्ज कराई है। राइस मिल की जांच रिपोर्ट पर्यावरण के अधिकारियों ने कलेक्टर को प्रस्तुत कर दी है। पर्यावरण संरक्षण मंडल की टीम ने जांच के दौरान पाया कि यहां पर स्टॉक में राइस मिल से निकलने वाली राख का स्टॉक रखा हुआ है। जो हवा चलने पर उड़ता है। राइस मिल के बगल में बनी हुई कॉलोनी में यह राख उड़कर फैल जाती है। बतादें कि राइस मिल से निकलने वाले धुंआ और गंदे पानी से वातावरण खराब हो रहा है। इस पर मिल के संचालकों पर धारा 133 के तहत कार्रवाई की जा सकती है। राईस मिल पीएचई ट्रीटमेंट नहीं करने पर 20 हजार से 1 लाख रुपए का जुर्माना का प्रावधान है, हालांकि अभी सिर्फ सुधार की हिदायत देकर मिलर को छोड़ा गया है। अधिकारियों ने पॉल्यूशन की एनओसी के शर्तों का पूरी तरह पालन करने की हिदायत दी है। प्रदूषित पानी को मिल की जमीन पर ही रोकने के निर्देश दिए हैं। उन्होंने कार्रवाई करते हुए सख्त हिदायत दी कि भविष्य में राइस मिल लोगों की सेहत को ध्यान में रखने, राइस मिल प्रदूषित पानी खुले में न फैले और राख भी नहीं उड़े, इस बात का विशेष ध्यान रखा जाए। उन्होंने कहा कि प्रदूषण विभाग द्वारा लागू नियमों के अनुसार राइस मिल चिमनी से निकलने वाले धुएं और पानी को फिल्टर करने के लिए ट्रीटमेंट प्लांट लगाना अनिवार्य है और इसका समय-समय पर मेंटेनेंस जरूरी है।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता केलिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादकः डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008